ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(1): 1070-1073
www.allresearchjournal.com
Received: 04-11-2016
Accepted: 05-01-2017

डॉ. सीताराम गुर्जर
सह आचार्य (साहित्य),
राजकीय शास्त्री संस्कृत
महाविद्यालय, दौसा,
राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सीताराम गुर्जर
सह आचार्य (साहित्य),
राजकीय शास्त्री संस्कृत
महाविद्यालय, दौसा,
राजस्थान, भारत

महाभाष्य के पश्पशाह्निक में समागत वैदिक मन्त्रों तथा शब्दों का समीक्षण

डॉ. सीताराम गुर्जर

सारांश:
दृष्टिगत शोधलेख के द्वारा पश्पशाह्निक में विहित वैदिकमन्त्रों का व्याकरण कि दृष्टि से समीक्षणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वस्तुत: किसी भी साहित्य में वाक्यार्थ को जानने के लिये व्याकरण अतीव महत्वपूर्ण अङ्ग होति है। चयनित इस ग्रन्थ में वैदिक मन्त्रों अर्थात वैदिक मन्त्रों में पठित शब्दों का अर्थावबोधन प्रस्तुत किया गया है।

कूटशब्द: पश्पशाह्निक, विद् ज्ञाने, कर्तव्याकर्तव्यबोधक, वैदिक मन्त्रों, सर्वज्ञानमयो हिस

प्रस्तावना

"विद् ज्ञाने" इति विद् धातु से धञ् प्रत्यय करने पर वेद यह रूप निष्पादित होता है। वेदों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वेद के माध्यम से ही विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की राशि तथा संस्कृति का अवबोध होता है। कर्तव्याकर्तव्यबोधक, शुभ तथा अशुभ का निर्देशक, सुख शान्ति का साधक, जीवन का उन्नायक, निराशा का विनाशक यदि कोई है तो वह केवल वेद ही है। जैसे कहा भी है – 'सर्वज्ञानमयो हिसः'।

वेद के विषय अनेक धर्मों तथा संस्कृत के ग्रन्थों में देखने को मिलते हैं। जैसा की आचार्य मनु ने कहा है -

"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" [1]।

अर्थात् धर्म का मूल यदि कोई है तो वह केवल वेद है।
वेद के विषय में आचार्य मनु लिखते हैं -

"यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
सः सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हिसः" [2]।।

अर्थात् सारा विज्ञान वेद के अर्न्तनिहित है।
इसी प्रकार स्मृतिकार आचार्य मनु वेद की विशिष्टता को बताते हुये कहते हैं –

"वेदमेव सदाऽभ्यस्येत् तपस्वप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासोहि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते" [3] ।।
"योऽनधीत्य द्विजोवेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शुद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः" [4] ।।

स्मृतिकार का यहाँ यह आशय है यदि कोई ब्राह्मण अथवा विद्वत्जन वेदाध्ययन के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य करता है तो उसका जीवन शुद्रत्व को प्राप्त हो जाता है । अर्थात् उसके ज्ञान की महत्ता नहीं होती है । वेद की सम्पूर्णता को बताते हुये आचार्य मनु कहते हैं –

"सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे" [5] ।।

भास्कराचार्य ने इस विषय में कहा है -

"यो वेदवदनं सदनं हि सम्यक् ।
ब्राह्मणाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम् ।।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य श्रीमाना ।
शास्त्रान्तरेषु भवति श्रवणेऽधिकारी" ।।

उपरोक्त समस्त बातों से यह स्पष्ट हो चुका है कि वेद के अध्ययन के बिना अन्य शास्त्रों का अध्ययन अपने सही रूप को प्रदर्शित करने की क्षमता खो देता है किन्तु वेदाध्ययन के लिये वेदपुरुष के शरीररूपी छः अंगों का अध्ययन परम आवश्यक है । इन्ही छः अंगों में से एक व्याकरण हैं – "मुख व्याकरणम् स्मृतम्" । व्याकरण की महत्ता यहाँ इसलिये बढ़ जाती है क्योंकि बिना व्याकरणाध्ययन के वेद को पढ़कर अर्थ समझना निश्चित ही असभंव है ।

इसके विषय में भाष्यकार पतञ्जलि ने भी लिखा है -

"एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः सवर्गे लोके च कामधुक् भवति" ।।

अर्थात् यदि मनुष्य को एक शब्द का ज्ञान उचित रूप से हो जाये तो उसे मोक्ष की प्राप्ति निश्चित ही होती है ।
इसी विषय में संस्कृत व्याकरण के दार्शनिक विद्वान् आचार्य भर्तृहरि ने भी कहा है -

"तद्वारमपवर्गस्य वामलानां चिकित्सितम् ।
पवित्रम् सर्वविद्यानाधिविद्य प्रकाशते" [6] ।।

तथा व्याकरण के महत्व में यह भी उक्ति आती है –

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ।।

वेद की इस अद्भुत् विशिष्टता तथा वास्तविकता को व्याकरण के विद्वानों ने समझा तथा उसे अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित भी किया । समस्त व्याकरण का तथा इसके समस्त ग्रन्थों के मूल निष्कर्ष से वेदों की रक्षा को ही सिद्ध किया गया है । भाष्यकार भगवान् पतञ्जलि ने व्याकरण महाभाष्य के प्रथम आह्निक में जिसे पश्पशह्निक के नाम से भी जाना जाता है में अर्न्तनिहित किया है । भाष्यकार ने कहा है - अथ शब्दानुशासनम् । केषां शब्दानाम् लौकिकानां वैदिकानां च अर्थात् शब्दो का अनुशासन करते समय पतञ्जलि ने लौकिक तथा वैदिक दोनों प्रकार के शब्दों का अनुशासन किया है । यहाँ ध्यातव्य बिन्दु यही है कि भगवान पतञ्जलि ने लौकिक शब्दों के साथ-साथ वैदिक शब्दों का भी अनुशासन किया है ।
लौकिक शब्दों में गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती, शकुनि (पक्षी), मृग, ब्राह्मण तथा वैदिक शब्दों में ऋग्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मण्डल का प्रथम मन्त्र है ।

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्" [7] !!

इस मन्त्र के ऋषि मधुछन्दा, देवता अग्नि तथा छंद गायत्री है । इस मन्त्र का भावार्थ यही है । प्रकाश रूप में अभिव्यक्त प्रभु की उपासना करो प्रकाशरूप प्रभु अभिमुख उपस्थित है । हमारी साधना का इष्ट है । यह सतत साधना से प्रगट होता है । प्रेरक गृहीता दाता है तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का स्वामी है । इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं -

जीवन यज्ञ का लक्ष्य प्रभू
सतत् साधना से पाता है ।
प्रेरक सत्य धन का दाता
प्रकाश रूप प्रभु आता है ।

इसी प्रकार सामवेद संहिता के प्रथम अध्याय का प्रथम मन्त्र है ।

"अग्नआयाहि वीतये, गृणानो हव्यदातये नि होता सत्सि बर्हिषी" [8] ।।

अर्थात् हृदय में प्रभु का प्रकाश होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है । इस प्रकाशमय हृदय में सन्मार्ग की प्रेरणा देते हुये प्रभु भक्तों के कर्म बन्धनों का उच्छेद करते हैं तथा वासना शून्य हृदय में उसी प्रभु की प्रेरणा सुनाई देती है ।
इसी प्रकार तैत्तिरीय संहिता का प्रथम मन्त्र है –

"इषे त्वोर्जे त्वा वायवः स्थोपायवः स्थ देवो वः सविता प्रापयतु श्रेष्टतमाय् कर्मणे आप्याध्वमधिन्या अयक्ष्मामावः
स्तेन ईशत् माऽधश सो रूद्रस्य हेति परिवो वृणक्तं ध्रुवा
अस्मिन गोपतो स्यात् बहियजमानस्य पशुन पाहि" [9] ।

संहिता का प्रथम अध्याय का प्रथम मन्त्र है –

"शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये शय्योरभिस्ववन्तु नः" [10] ।

इन सभी प्रकार के चारों वेदों के मन्त्रों का अनुशासन भगवान् पतञ्जलि ने अपने भाष्य ग्रन्थ में किया है । जिससे इन मन्त्रों का अर्थ जानने तथा समझने में कोई बाधा नहीं होती है । यदि इन का अनुशासन नहीं होता तो इनमें अपाणिनीयता झलकती तथा योगी-सिद्धजन ही इन मन्त्रों को समझ पाते । सामान्य मानव जाति के लिये इनका वास्तविक अर्थ दुर्लभ हो जाता भगवान् पतञ्जलि ने तो मन्त्र व्याकरण के पांच मुख्य तथा १३ आनुषंगिक आयोजनों के पीछे की मूल भावना वेदों की रक्षा ही है । वे व्याकरणाध्ययन के पाँच प्रयोजन है । 'रक्षोहागमलध्व-सन्देहाः प्रयोजनानि । रक्षा – 'रक्षार्थं वेदानाम् अध्वेयं व्याकरणम्" वेदों की रक्षा के लिये व्याकरण का अध्ययन करना चाहिये क्योंकि लोप, आगम और आदेश को जानने वाला ही वेदों की रक्षा कर पायेगा।
द्वितीय प्रायोजन है "ऊह" - चूंकि वेद में जो भी मन्त्र हैं वो विभक्ति तथा सभी लिंगों सहित नहीं पढे गये है । इसलिये यज्ञ में प्रवृत्त हुये पुरुष को अवश्य ही उन मन्त्रों को उचित रीति से बदलना होता है जो कि व्याकरण के ज्ञान के बिना असम्भव है । इसका भावार्थ यह है कि - लोक में लोप, आगम और आदेश को न देखकर और वेद में उन्हें देखकर व्याकरण न जानने वाला भ्रान्त हो सकता है और लोक का अनुसरण करते हुये वैदिक शब्दों को भी वैसे ही पढ़ने की चेष्टा करेगा ऐसी संभावना हो सकती है । जैसे देवा अदुह यहाँ र का आगम हुआ है तथा त का लोप में अदुहत लङ् बहु. आ. में प्रयोग होता है । मध्या कर्तोवितत संजभार । यहा **ह** के स्थान में भू आदेश हुआ है । लोक में संजहार रूप प्रसिद्ध है ।

आगम-भाष्य का वचन है कि –

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्ययो ज्ञेयश्च अर्थात् ब्राह्मण को लाभ आदि के प्रयोजन के बिना निष्कारण वेद पढना चाहिए ।
लाघव लघ्नुता अथवा सरलता के लिये वेद पढ़ना चाहिये। असन्देह-सन्देह की निवृत्ति के लिये व्याकरण को पढ़ना चाहिये ।
भाष्य मे कहा भी है – 'असन्देहार्थे चाध्येयं व्याकरणम्' क्योंकि वेदों में अनेक स्थानों पर सन्देह उत्पन्न होता है ।
उदाहरण के लिये वेद की पंक्ति है –

याज्ञिक लोग पढ़ते है - स्थूल पृषतीमाभिवारुणीमनडवा-हिमालभेतेति इसका अर्थ यह है कि स्थूल पृषति गाय को अग्नि तथा वरुण देवताओं के उद्देश्य से आलम्भन करे अर्थात् भेंट दे । अब यहाँ सन्देह होता है कि स्थूल पद पृषति विशेषण पद के अर्थ में है क्योंकि इसके यहाँ दो अर्थ निकलते हैं । प्रथम तो यह कि वह मोटी भी है और बिन्दुमती भी है । द्वितीय अर्थ यह है कि जिसके शरीर पर स्थूल बिन्दु है । यदि स्थूला चासौ पृषति स स्थूलपृषती स्थूलानि पृषन्ति यस्याः सेयं स्थूल पृषतीति । यदि यहाँ पूर्व पद स्थूल अपना ही स्वर है तो बहुव्रीहि है तथा समास के अन्त्य अच् उदात है तो यह तत्पुरुष समास है ।
व्याकरणाध्ययन के अभाव में व्यक्ति स्वर निश्चित नहीं कर पायेगा । स्वर के अभाव में हस्त संचालन की क्रिया पर भी प्रभाव पड़ेगा ।
इसी विषय में एक बहुत ही रोचक उदाहरण है जो हमें एक पौराणिक घटना से भी मिलता है -

'मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोपराधात्' ।।

'इन्द्र शत्रुर्वर्धष्व' - इस वाक्य में स्वरभेद से समास भेद तथा इन्द्रस्य शत्रु इति तत्पुरुषः अर्थात् वृत्रः इति वर्धताम् (वृत्रासुर की आयु बढ़े ।) इन्द्र चासो स वर्धताम् अर्थात् इन्द्र वर्धताम् इन्द्र बढे । यहाँ कर्मधारय समास करने पर स्वर भेद हो जाता है । अतः स्वर विहिन मन्त्र का उच्चारण

से वाणीरूपी वाक्वज्र से यजमान का ही नाश होता है । जैसे कि वृत्रासुर का हुआ था इसलिये व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है । महाभाष्य के अर्न्तगत और अनेक मन्त्रों का उल्लेख मिलता है । वो निम्न हैं –

"त्वारि श्रृंगांस्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मत्यॉं आ विवेशं ।।
उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वःश्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः" ।।

अर्थात् उस महान वृषभ की तुलना करते हुये बताते हैं - इसके चार सींग हैं, तीन चरण हैं, दो सिर हैं तथा सात हाथ हैं । यह महान देवता मनुष्य में प्रवेश किये हुये हैं । जो चार सींग हैं - वे चार पदराशियाँ है - नाम, आख्यात, उपसर्ग, और निपात। इसके तीन पाद ये भूत, भविष्यत, वर्तमान तीनों काल हैं । इसके दो सिंग है – नित्य, अनित्य । इसके साथ हाथ रूपी विभक्तियाँ हैं । यह तीन स्थानों वक्ष, कण्ठ व सिर में बसा हुआ है । कामनाओं की दृष्टि करने से यह वृषभ ही उस महान् देव के साथ हमारा सायुज्य हो इसलिये वेद पढना चाहिये ।
उतत्व् - यहाँ विद्वान् तथा मूर्ख के भेद को बताया है । कोई वाणी को देखते हुये भी नहीं देखता तथा सुनते हुये भी नहीं सुनता है ।
अतः वाणी अपना स्वरूप हमारे प्रति प्रगट करे इसलिये व्याकरण पढ़ना चाहिये । अतः इन दोनों श्लोकों से व्याकरण की विषयता सिद्ध होती है ।

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रेषां लक्ष्मीर्निहिताऽधिवाचि" ।।

अर्थात् जिस प्रकार सत्तु को चालनी में से छानने पर योग्य पदार्थ बच जाता है । इसी प्रकार ज्ञानी लोग अपने प्रकृष्ट ज्ञान के बल वाणी का व्याकरण (विश्लेषण-प्रकृति-प्रत्यय-विभाग) करते हैं । अतः यह स्पष्ट हो चुका है कि वेदाध्ययन के लिये व्याकरण का ज्ञान होना परमावश्यक है । भगवान् पतञ्जलिकृत महाभाष्य के प्रथम आह्निक में वैदिक मन्त्रों का समावेश इस बात का द्योतक है, कि भाष्य की दृष्टि से तथा व्याकरणात्मक वैदिक ज्ञान से अवगत कराया है । प्रथम में आये चारों मन्त्र चारों वेदों से हैं और उनके प्रथम मन्त्र है । इसका अर्थ यह है कि भाष्य की आगमता सभी वेदों में है । यही नहीं भाष्यकार ने प्रथम आह्निक में पूर्णतया मनोवैज्ञानिता तथा तथ्यात्मकता के साथ मन्त्रों को सिद्धता की ओर बढ़ाया है । जिस प्रकार उसके प्रयोजनों के माध्यम से यह बात सुस्पष्ट हो जाती है । जैसे – "दशम्यां पुत्रस्य" ।

याज्ञिकाः पठन्ति –"दशम्युतकालं पुत्रस्य जातस्य नाम विदध्याद् घोषवदाधन्तरन्त स्थमवृद्धं त्रिपुरुषानुकमनरि प्रतिष्ठितम्" ।
याज्ञिक लोग पढ़ते हैं - पुत्र के जन्म से दशमी रात बीतने पर (अर्थात् ग्यारहवें दिन) उत्पन्न हुये पुत्र का नाम रखे । जो आदि में घोषवान् वर्ण वाला हो, बीच में अन्तःस्थ वर्ण वाला हो और वृद्धि स्वर (आ ऐ औ) से युक्त न हो, जो पिता के तीन पूर्व पुरुषों का नाम स्मरण कराता हो और शत्रु के नाम में प्रसिद्ध न हो । नाम दो अक्षर वाला अथवा चार अक्षर वाला रखे, वह कृदन्त हो तद्धितान्त न हो, अतः व्याकरण के ज्ञान के बिना इन वेदों में ये शब्द, उक्तियां तथा मन्त्र अपने सही मूर्त रूप को देने में सक्षम नहीं है । योगिजन तो योगबल अथवा तपबल के द्वारा इसे जान लेते हैं किन्तु सामान्य सुधीजन भाष्य तथा व्याकरणग्रन्थों के बिना इसे समझ नहीं पाते हैं । भाष्य में मन्त्रों को अन्तर्निहत करने के पीछे मूल भावना यही है कि भाष्य के माध्यम से मन्त्रों का विश्लेषणात्मक तथा सरलता से अध्ययन हो सके ।

सन्दर्भ

1. मनुस्मृति – २/६
2. मनुस्मृति – २/७
3. मनुस्मृति – २/१६६
4. मनुस्मृति – २/१६८
5. मनुस्मृति – १/१२१
6. वाक्यपदीय – १४
7. ऋग्वेद – १/१/१
8. सामवेद संहिता - १-१-१
9. तैतरीय संहिता - १-१-१
10. अर्थवेद संहिता - १-१-१